प्रस्तुत कविता किंचित अतिरंजित लग सकती है लेकिन जिन्होंने सुदूर आदिवासी अंचलों में बच्चों को तथाकथित दोपहर का भोजन करते देखा है और उन शालाओं की ढहती दीवारों पर नजर डाली है उन्हें इस कविता की 'लाउडनैस' नहीं खटकेगी। बल्कि बच्चों के सवाल न करने की विवशता का 'लो प्रॉफोइल' मार्मिक अनुभूति देगा । वैसे यह एक वस्तु - सत्य का बयान तो है ही, भले ही आप इसे सामान्यीकरण न मानें ।

अनुत्तरित प्रश्न

❑ भास्कर चौधुरी

पाठशाला की घंटी बजते ही
बच्चे दौड़ पड़ते हैं
गिरते पड़ते कक्षा के
एकमात्र दरवाजे की ओर
बच्चे होड करने लगते हैं
टाट-पट्टी में अपना स्थान
सुनिश्चित करने के लिए
बच्चे नहीं पूछते
शिक्षक के न आने का प्रश्न !

बच्चे कतारबद्ध हो जाते हैं
कुछ ही क्षणों में
इंतजार करते हैं अपनी बारी का
बच्चे दुपहरी का दलिया
बड़े मनोयोग से खाते हैं
बच्चे नहीं पूछते
दलिया में कंकड़ पत्थर होने का प्रश्न !

बच्चे बार-बार छीलते हैं पेन्सिल
तराशते उसकी धार तेज करते हैं
बच्चे नहीं पूछते
पेन्सिल की नोंक के टूटने का प्रश्न !

बच्चे भरी बारिश में भी
पाठशाला जाना नहीं भूलते
बच्चे बड़े जतन से संभालते हैं
अंजुरी में/टपकते छत् का पानी
ढह गई दीवार के नीचे दबे बच्चे-
नहीं पूछते/असमय मौत का प्रश्न !!!